मधुर-मधुर मेरे दीपक जल

कविता की व्याख्या

1.

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ पैफला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तनक
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल!
पुलक पुलक मेरे दीपक जल!

शब्दार्थ: दीपक = आस्था रूपी दीपक, प्रतिक्षण = हर पल, प्रिय तम = सबसे अधिक प्रिय, परमात्माक ईश्वर, पथ = मार्ग, आलोकित = प्रकाशित, सौरभ = सगुंध, विपुल = विशाल, बहतु बड़ा, मृदुल = कोमल, तन = शरीर, सिंधु = सागर, समुद्र अपरिमित = असीमित, जिसकी सीमा न हो, अपारक पुलक = रोमांच, खुशी।

व्याख्या: कवयित्री के मन में ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास है। इसी आस्था और विश्वास के सहारे वह अपने प्रियतम परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाना चाहती हैं। महादेवी जी अपने हृदय अथवा अंतर्मन में स्थित आस्था रूपी दीपक को संबोधित करती हुई कहती हैं कि तुम लगातार जलते रहो, हर पल, हर घड़ी, हर दिन, हर समय, युग-युगांतर तक जलते रहो, ताकि मेरे परमात्मा रूपी प्रियतम का पथ सदा तुम्हारे प्रकाश से जगमगाता रहे। भाव यह है कि मेरी आस्था कभी न टूटे, विश्वास रूपी दीपक कभी न बुझे। ईश्वर भक्ति के लिए मेरा यह दीपक सतत जलता रहे। अपने मन के बाद, कवयित्री अपने तन की ओर देखती हैं और कहती हैं कि ओ मेरा तन! तू बहुत विशाल धूप बन जा। जिस प्रकार धूप और अगरबत्ती स्वयं जल-जलकर समस्त विश्व को सुगंधित कर देते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी विशाल धूप बनकर निरंतर जले और समस्त संसार को अपने सत्कर्मों की सुगंध से भर दे। आगे कवयित्री अपने तन को कोमल मोम के समान बनकर निरंतर जलते हुए (यानी प्रभुभक्ति करते हुए) अपने अहंकार को गला दे, मिटा दे, पूर्णतः नष्ट कर दे। जिस प्रकार मोम लगातार जलते हुए पिघलकर अंततः समाप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार अपने प्रियतम परमात्मा की आराधना करते हुए हमें अपने अहंकार को मिटा देना चाहिए। इस प्रकार तन रूपी मोम के जलने से और अहंकार के पिघलने से ऐसा प्रकाश का सागर फैले कि जिसमें जीवन का एक-एक अणु के समान तुच्छ अहंकार पिघलकर, गलकर समाप्त हो जाए। अरे मेरे विश्वास एवं आस्था रूपी दीपक! तू प्रसन्नतापूर्वक लगातार जलता रहा। इस प्रकार कवयित्री संपूर्ण तन-मन से प्रभु-भक्ति में लीन हो जाना चाहती हैं।

काव्य-सौंदर्य:

भाव पक्ष:

1. कवयित्री ईश्वर के प्रति आस्था रूपी दीपक को प्रज्वलित करना चाहती हैं।
2. कवयित्री परमात्मा को ही अपना प्रियतम मानती हैं और वह उनमें समाहित हो जाने की प्रार्थना कर रही हैं।

कला पक्ष:

1. तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है तथा भाषा भावाभिव्यक्तिमें सफल है।
2. 'युग-युग' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. 'दीपक' में छद्म रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। यह ईश्वर के प्रति अमित आस्था का प्रतीक भी है।
4. धूप और मोम में भी छद्म रूपक अलंकार है। तन रूपी धूप और मोम रूपी कोमल शरीर को कवयित्री लगातार प्रभुभक्ति में लगाना चाहती हैं।

2.

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण
विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ से मिल'!
सिहर सिहर मेरे दीपक जल!
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपकऋ
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल!
विहँस विहँस मेरे दीपक जल!

शब्दार्थ: शीतल = ठंडे, नूतन = नए, ज्वाला-कण = आग के कण, विश्व = संसार, शलभ = पतंगा, सिहर = काँपना, असंख्यक = अनेक, स्नेहहीन = प्रेम रहित, नित = नित्य, उर = हृदय, विद्युत = बिजली।

व्याख्या: कवयित्री कह रही हैं कि आज संपूर्ण विश्व में ईश्वर या परमात्मा के प्रति आस्था का अभाव है। इसलिए सारे नए कोमल प्राण आज ईश्वर की आस्था की ज्योति (चिनगारी के कण) ढूँढ़ रहे हैं, किंतु कहीं भी न पाकर वे तुझसे (कवयित्री के विश्वास रूपी दीपक से) आस्था की चिनगारी माँग रहे हैं ताकि उनके हृदय में भी ईश्वर-भक्ति और ईश्वर के प्रति आस्था के दीपक प्रज्वलित हो जाएँ। यहाँ कवयित्री ने नूतन, शीतल उन प्राणियों को कहा है, जिनके मन में ईश्वर-भक्ति का कोई अनुभव नहीं है और प्रभु की आस्था की चिनगारी नहीं है। अतः वे सब अनुभव हीन शीतल लोग कवयित्री की असीमित आस्था रूपी दीपक की लौ से एक चिनगारी लेकर अपने आपको प्रभुभक्ति में लगा देना चाहते हैं। आगे कवयित्री कहती हैं यह जग रूपी पतंगा पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि हाय! यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं इस प्रेम-भक्ति की लौ में जलकर अपने अहंकार को न मिटा सका। जब तक जीव का अहंकार नहीं मिटता, तब तक परमात्मा के साथ जीवात्मा का मिलन नहीं होता। अतः जग रूपी पतंगे

को आत्माहुति देने के लिए कवयित्री अपने आस्था रूपी दीपक को सिहर-सिहर कर जलने के लिए कहती हैं। विश्व-कल्याण की भावना भी इन पंक्तियों में झलकती है। आकाश में अनगिनत तारों को देखकर कवयित्री को ऐसा लगता है कि वे सब स्नेहरहित हैं। अपार जलराशि से पूर्ण सागर का जल जब गर्म हो जाता है, तब भाप बनकर वह बादल में परिवर्तित हो जाता है और कड़कती बिजली के साथ आकाश में घनघोर घटा के रूप में दिखाई पड़ता है। 'जलमय सागर का उर जलना' का तात्पर्य संक्षेप में यही है। लोग आज सांसारिक ऐश्वर्य एवं वैभव से परिपूर्ण होकर भी अशांत हैं, उनका हृदय ईर्ष्या और घृणा की आग से निरंतर जलता रहता है। किसी को भी सुख-शांति नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में कवयित्री अपने हृदय में स्थित आस्था रूपी दीपक को हँसते-हँसते लगातार जलते रहने के लिए आग्रह करती हैं, ताकि प्रभु का पथ आलोकित हो और समस्त जगवासी प्रभु के पथ पर चल पड़ें।

काव्य-सौंदर्य:

भाव पक्ष:

1. कवयित्री आस्था रूपी दीपक को निरंतर जलते रहने के लिए कह रही हैं।
2. कवयित्री ने प्रकृति के अनेक उदाहरणों, जैसे शलभ, विद्युत, बादल आदि का प्रयोग किया है।
3. काव्यांश में आध्यात्मिकता की छाया है।
4. आत्मा-परमात्मा के मिलने से परम शांति की अनुभूति कराने की चेष्टा की गई है।

कला पक्ष:

1. तत्सम भाषा का प्रयोग किया गया है एवं भाषा भावनानुकूल तथा प्रभावोत्पादक है।
2. 'विश्व-शलभ' में रूपक अलंकार है।
3. 'सिहर-सिहर' और 'विहँस-विहँस' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

कवि-परिचय

महादेवी वर्मा

इनका जन्म 1907 को होली के दिन उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ तथा प्रारंभिक शिक्षा इंदौर में हुई। विवाह के कुछ अंतराल के बाद पढ़ाई फिर शुरू की। ये मिडिल में पूरे प्रांत में प्रथम आई और छात्रवृत्ति भी पाई। यह सिलसिला कई सालों तक चला। बाद में इन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहा परन्तु गांधीजी के आह्वान पर सामाजिक कार्यों में जुट गयीं। उच्च शिक्षा के लिए विदेश ना जाकर नारी शिक्षा प्रसार में जुट गयीं। इन्होंने छायावाद के अन्य चार रचनाकारों में औरों से भिन्न अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। 11 सितम्बर 1987 को इनका देहावसान हो गया।

प्रमुख कार्य

काव्य कृतियाँ — बारहमासा, नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, प्रथम आयाम, अग्नि रेखा, यामा।

गद्य रचनाएं – अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियाँ, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी, मेरा परिवार और चिंतन के क्षण।

पुरस्कार – पद्मभूषण, ज्ञानपीठ सहित अन्य प्रतिष्ठित पुरस्कार।

कविता का सार

‘मधुर -मधुर मेरे दीपक जल’, शीषर्क की कविता छायावाद की प्रमुख कवयित्री ‘महादेवी वर्मा’ द्वारा रचित है। कवयित्री इस कविता के माध्यम से परमात्मा से मिलन की उत्कट इच्छा व्यक्त करती हैं। इस कविता में दीपक को आस्था के प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है। दीपक के प्रज्वलित होने के माध्यम से परमात्मा के मार्ग को आलोकित करने की बात कही गई है। कवयित्री अपने प्रियतम (परमात्मा) से एकाकार होना चाहती हैं। वह अपने तन के कण-कण को मोम की भाँति गलाना चाहती हैं। वह चाहती हैं कि अपने मन में स्थित आस्था रूपी दीपक से प्रभु-मिलन का मार्ग प्रकाशित हो जाए। वह नहीं चाहती कि विश्ववासी प्रभुभक्ति और प्रभुकृपा से वंचित रहें। वह प्रभु भक्ति की लौ में स्वयं को जलाने के लिए तत्पर हैं। वह प्रकृति के अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत करती हैं। वह कहती हैं कि सागर का हृदय, आकाश के अनगिनत तारे तथा बादल में विद्यमान बिजली सभी प्राकृतिक उपादान भी नित्य प्रति जलते रहते हैं। समस्त विश्ववासी का हृदय भी ईश्या और घृणा की आग में जलता रहता है, किंतु कवयित्री उन्हें ईश्वर भक्ति का मार्ग दिखाना चाहती हैं ताकि सबका कल्याण हो।